International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 23-06-2023, Accepted: 09-07-2023, Published: 25-07-2023
Volume 5, Issue 3, 2023, Page No. 1-4

प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत दलित कहानियों में निहित भाषिक स्वरूप का तुलनात्मक मूल्यांकन

डॉ. सदानन्द वर्मा
शोध अध्येता, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली, भारत

सारांश
प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि दोनों साहित्य के क्षेत्र में युग प्रवर्तक रचनाकार हैं। दोनों ही रचनाकारों ने दलित समाज तथा उनकी दैनंदिनी परिस्थितियों पर अपने–अपने तरीके से लेखन कार्य किया है। दोनों ही रचनाकारों का जुड़ाव ग्रामीण पृष्ठभूमि से रहा है। हाँ यह अलग बात है कि जिस तरीके से ओमप्रकाश वाल्मीकि ने उस समाज के एक–एक पहलुओं के सुखात्मक व दुरूखात्मक स्थितियों का अनुभव किया वैसा अनुभव प्रेमचंद के जीवन में न तो रहा और न ही भोक्ता के रूप में दिखाई ही पड़ता है। लेकिन यह सत्य है कि प्रेमचंद ने जिस दलित समाज और उनकी जिजीविषा का चित्रण अपनी लेखनी के माध्यम से किया है वह यथार्थ के ज्यादा करीब दिखाई पड़ता है। वे अपने आस–पास घटित होते दलित जीवन की दैनंदिनी को जिस रूप में देखा, महशूस किया उसे उसी रूप में समाज के समक्ष चित्रित करने की कोशिश की। जिस प्रकार से प्रेमचंद ने स्वतंत्रतापूर्व के भारतीय समाज की दशा और स्थिति पर अपनी लेखनी चलायी ठीक उसी प्रकार से ओमप्रकाश वाल्मीकि ने स्वतंत्रता पश्चात् की सामाजिक दशा को अपनी रचनाओं में अंकित करने की कोशिश की है। दोनों रचनाकारों के दलित जीवन और उनकी स्थितियों का मूल्यांकन करने से न केवल उनके समय की सामाजिक संरचना में दलितों की स्थिति का यथार्थ स्वरूप उभर कर आता है बल्कि सवर्ण–दलित के मध्य संबंध, स्थितियाँ, आपसी बोल–चाल, रहन–सहन, बात–व्यवहार एवं आतंरिक संबंधों का अवलोकन कर पाना बहुत कुछ सहज हो जाता है। यह अलग बात है कि दोनों रचनाकारों के यहाँ दलित जीवन की जिजीविषा, रोजमर्रा की स्थितियों की वास्तविक स्थिति एवं समाज में उच्च–निम्न के भेद–भाव से उपजी आतंरिक बोध की स्थिति के मूल्यांकन के परिणाम स्वरूप जहाँ बहुत कुछ समानताएं देखने को मिलती हैं तो वहीं बहुत जगह असमानताओं की स्थिति भी दिखाई पड़ती है।

मूल शब्दः भाषा सौन्दर्य, शिल्प विधान, संवेदना, स्वानुभूति, सहानुभूति, पुरोहितवाद, भाग्यवाद, अम्बेडकरवादी चिंतन, दलित चेतना

भाषा भावाभिव्यक्ति का प्रमुख साधन होता है। भाषा के माध्यम से ही मनुष्य अपने भाव और विचारों को दूसरे व्यक्ति तक पहुंचा पाने में सक्षम हो पाता है और दूसरे व्यक्ति के भाव एवं विचार को स्वयं ग्रहण कर पाने में। मानव के अन्दर भाषा का विकास कब और कैसे हुआ इसपर विद्वानों के मध्य मतभेद की स्थिति दिखाई पड़ती है फिर भी अधिकाधिक विद्वानों का यह मानना है कि भाषा का विकास मनुष्य के विकास के साथ ही हुआ है। मनुष्य अपनी दैनदिनी जरूरतों के अनुसार दिन–प्रतिदिन अपने भाषिक स्वरूप में बदलाव करता रहा जिसका वास्तविक रूप आज हमारे समक्ष दिखाई पड़ता है। भाषा ही वह एक माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने सामाजिक क्रियाकलापों, रोजमर्रा के जीवन बोधों की अभिव्यक्ति आसानी से कर पाते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः सामाजिक अंतर्संबंधो और आपसी क्रियाकलापों की परिणिति के रूप में वह जिस माध्यम का प्रयोग करता है। वह माध्यम भाषा ही होती है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि जिस समाज की भाषा जितनी अधिक समुन्नत, सुव्यवस्थित और परिमार्जित होती है। वह समाज तथा उसकी संस्कृति भी उतना ही अधिक श्रेष्ठ और समृद्धशाली बनती जाती है। भाषा के सम्बंध में महावीर प्रसाद द्विवेदी का यह कथन प्रासंगिक ठहरता है; जब वे लिखते हैं कि "जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है, उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। जातियों की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है, उसके साहित्य रुपी आईने में ही मिल सकती है।"[1] भाषा मानव सभ्यता के विकास की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। मानव जाति का सारा ज्ञान भाषा के माध्यम से ही विकसित हुआ है। संसार में केवल मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो वाक् शक्ति से निपुण होने के साथ–साथ सार्थक शब्दों का प्रयोग करता है; चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित भाषा रूपी शक्ति ही उसे अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ बनती है।

किसी भी भाषा की समृद्धि में शब्दों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सार्थक शब्दों के प्रयोग से ही वाक्य को आकार मिलता है, जिससे भाषा समृद्ध और परिष्कृत बनती है तथा अपने पाठकों को आकर्षित करती है। प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि, दोनों रचनाकारों ने अपनी–अपनी रचनाओं में शब्दों के चयन हेतु ग्रामीण जनजीवन से जुड़े शब्दों अर्थात् बोल–चाल में प्रयोग किए जाने वाले शब्दों को ही ज्यादा महत्ता दी है। इसमें तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों की स्थिति यथावत व संवाद अनुरूप दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि उनके पात्र अपने यथार्थ जीवन से जुड़े हुए नजर आते हैं।

प्रेमचंद की भाषा में शब्दों का चुनाव उनके पात्रों के अनुरूप हुआ है, जो उनकी भाषा को दलित वर्ग के जन–जीवन की रोजमर्रा में प्रयोग होने वाली भाषाओं के ज्यादा समीप ले जाती है। जैसे– झाडू, कम्मल, गद्दे, घुड़किया, खैरात, जनम, मजूरी, धौंस, खाट, खटोला/खटिया, भूसा, पत्तल, चिलम, रांड, हलुआ–पूरी, संगी (दोस्त), लुआठी, झौंवा, ताड़ना, तक़दीर, सहलाना, चिलम, पुआल, पिशाच, थपथपाना, नेमधरम, किरोध, सेर भर, आधा सेर, किनारा, नजराना, दण्डवत, गड्डा, ईशोपाशन, जमींदार, हाकिम, दरार, कार–परोजन, अवकाश जलपान, पियक्कड़, मटमैला, विपन्नता आदि। इसी प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की भाषिक संरचना में देशज, तत्सम, तद्भव, शंकर और विदेशी शब्दों का प्रसंगानुरूप प्रयोग दिखाई पड़ता है जैसे– रस्म, लैम्पोस्ट, हेडमास्टर, हत्था, बिरादर, ताऊ, बुजुर्ग, इन्सलेट, बण्डल, खडंजे, फिसलन, कड़वाहट, आश्वस्त, कनस्तर, चूहड़े–चमारों, जातक, गिड़गिड़ाहट, रिरियाहट, बामन, बालिस्टर, लौंडिया, सलाम, बिरादरी, गर्मजोशी, लौंडा, तबादला आदि। निश्चित रूप से प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि का ग्रामीण परिवेश से जुड़ाव होने के कारण ही वे समाज के उन हकीकतों को चित्रित कर पाते हैं। इन दोनों कहानीकारों ने अपने समयगत परिस्थितियों का अवलोकन कर

विषय की विविधता पर ज़ोर तो दिया ही साथ ही साथ दलित कहानियों में सहजता एवं सरलता को भी स्थापित किया। यदि समाजगत स्थितियों पर बात करें तो प्रेमचंद ने उस समाज को तो सिर्फ देखा ही भर था लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि ने उसे देखा भी और जिया भी। इसीलिए प्रेमचंद की तुलना में ओमप्रकाश वाल्मीकि के पात्र व घटनाएँ मौलिक व यथार्थपरक ज्यादा प्रतीत होते हैं। उनके साथ हुए छलाव दलित समाज के स्वरूप का यथार्थ प्रतिबिंब उकेरते हैं। उनकी भाषा में प्रखरता, आवेश, बेचौनी आदि का होना देखा जा सकता हैं। दलितों द्वारा लिखे गए लेखन की भाषा पर अपनी दृष्टि डालते हुए शरणकुमार लिंबाले लिखते हैं कि "दलित साहित्य का यथार्थ अलग है। इस यथार्थ की भाषा अलग है। यह भाषा दलितों की गँवार–असभ्य भाषा है। यह भाषा दलितों की बोली भाषा है।"[2] अतः स्पष्ट है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानियों में चित्रित घटनाओं के आधार पर ही उनकी भाषा में आवेश, बेचौनी, अनगढ़ रूप दिखाई पड़ता है। उनकी भाषा में व्यक्त भावों का समावेश कोई बनावटी नहीं बल्कि सदियों से किए गए शोषण और अत्याचार को प्रकट करने के रूप में आया है।

दलित जीवन और स्थितियों के लेखन पर दोनों ही रचनाकरों ने लगभग सरल व सहज तथा आम जन–जीवन में प्रयोग होने वाली बोली या भाषा के शब्दों का चयन करना उचित समझा है। क्योंकि इनके पात्र दलित समाज में जीवन यापन करने वाले पात्र हैं; जिनकी बोल–चाल की भाषा न तो परिष्कृत और परिमार्जित ही दिखाई पड़ती है और न ही वे व्याकरण सम्मत वाक्यों की संरचना में गठित ही। यही कारण है कि दोनों रचनाकारों ने दलित समाज के बीच के शब्दों को चुनते हुए भाषा को पात्रानुकूल बनाया है। चूँकि प्रेमचंद शब्द चयन और प्रयोग में तत्सम, तद्भव, देशज व कुछ विदेशी शब्दों का सहारा भी लिया है। किन्तु उन्होंने अपनी भाषा हिन्दी ही रखी है। जैसे 'सद्गति' कहानी में दुखी की पत्नी झुरिया के कहने पर की पंडित जी को बैठने के लिए ठकुराने से खटोला नहीं मिल जाएगी इस पर झल्लाते हुए दुखी उससे कहता है "तू तो कभी–कभी ऐसी बात कह देती है कि देह जल जाती है। ठकुराने वाले मुझे खटिया देंगे! आग तक तो घर से निकलती नहीं, खटिया देंगे!"[3] या फिर इसी कहानी में दुखी को देखकर पंडित जी उससे पूछते हैं "आज कैसे चला रे दुखिया।" इस पर दुखी जबाब देते हुए कहता है। "बिटिया की सगाई कर रहा हूँ महाराज। कुछ साइत–सगुन विचारना है। कब मर्जी होगी?"[4] जबकि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी भाषा में ग्रामीण समाज के पात्रों के लिए गाँव की आम बोल–चाल की भाषा का प्रयोग करते हुए नजर आते हैं, जैसे– 'भय' कहानी में दिनेश द्वारा सूअर के बच्चे को पकड़ने में असफल पाती है तो हंसते हुए कहती है "अजी, थारे बस का ना है यो काम...तम तो दफ्तर में बैठ के कलम खिसगा ही जाणों हो।"[5] अथवा 'गौकसी' कहानी में मरे हुए गाय के चमड़े को शहर में बेचने के लिए ले जाते वक्त कल्लू को बीड़ी पीते देखकर जित्ता उससे कहता है "कल्लू एक बीड़ी मन्ने भी दे, धणी देर ते बीड़ी ना पी है।"[6] जबकि शहरी और पढ़े लिखे पात्रों के लिए समृद्ध व व्यवस्थित भाषा का चयन करते हैं, जैसे– मेडिकल कॉलेज में सवर्ण बच्चों द्वारा हो रहे दलित बच्चों पर प्रताड़नाओं को अमरदीप सरकारी अधिकारी राकेश से बताता है "सर ! हम लोग बहुत परेशानी में हैं ....समझ में नहीं आ रहा क्या करें?"[7] अथवा 'अधंड़' कहानी में गाँव जाने की उत्सुकता में पिंकी अपने पिता से पूछती है "डैड, वी आर ऑल्सो गोइंग विद यू....(डैड, हम भी आपके साथ जा सकते हैं।)"[8] स्पष्ट है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि के यहाँ जैसे पात्र हैं वैसे उनके संवाद। इनके पात्र अपनी स्थिति अनुसार ग्रामीण, हिंदी या अंग्रेजी आदि भाषाओं में संवाद करते हुए नजर आते हैं। यही कारण है कि इनके पात्र अपने वास्तविक जीवन को जीते हुए या उसमें पगते हुए नजर आते हैं।

वाक्य प्रयोजन

वाक्य प्रयोजन किसी भी भाषा की मजबूती और उसमें क्रमबद्धता और तारतम्यता बनाए रखने के लिए जरूरी होती है। वाक्य निर्माण में वाक्यों की पात्रानुकूल स्थिति, निर्माण एवं व्याकरण सम्मत उसका गठन न केवल भाषा को समृद्ध प्रदान करती है; बल्कि रचनाकार के लेखन को बोधगम्य एवं पठन योग्य बनाती है। वाक्य सार्थक शब्दों का समूह होता है। शब्द समूह वाक्य गठन में व्याकरण के नियमों के अनुसार गठित होता है। व्याकरणिक व्यवस्था के अनुसार ही उसमें सार्थकता, योग्यता, निकटता एवं पदक्रम आदि के गुण समाहित होते हैं। भाषा वैज्ञानिकों ने व्याकरणिक आधार पर वाक्य के तीन भेद किए हैं– सरल, संयुक्त तथा मिश्र वाक्य। वाक्य के इन तीनों स्वरूपों को ध्यान में रखते हुए प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी–अपनी कहानियों में वाक्य गठन का संयोजित रूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। चूँकि प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी–अपनी कहानियों में दलित जन–जीवन और उसकी स्थितियों–परिस्थितियों को रेखांकित करने का प्रयास किया है, इसीलिए उनके वाक्यों का गठन ज्यादातर सरल व साधारण रूप को ही प्रदर्शित करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

दोनों रचनाकारों ने अपनी कहानियों में संवाद अथवा कथ्य के आवश्यकतानुसार संयुक्त व मिश्र वाक्यों का प्रयोग भी किया है। जैसे संयुक्त वाक्यों के गठन का कुछ उदहारण हम यहाँ देखा सकते हैं। जैसे– प्रेमचंद कृत 'दूध का दाम' कहानी का यह वाक्य "वह बहुत खाकर थलथल हो गया था और दौड़ने में उसकी सांस फूलने लगी थी।" (पृष्ठ संख्या– 154) इसी प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'कहाँ जाए सतीश' में यह वाक्य "बरामदे में रखे लंबे बांस को उठाया और तार से पैंट कमीज को नीचे गिरा दिया।" (पृष्ठ संख्या– 50) ठीक इसी प्रकार से मिश्र वाक्यों के गठन की स्थिति में भी दोनों रचनाकारों ने प्रसंगानुसार ध्यान देते हुए किया है। जैसे– प्रेमचंद कृत 'सद्गति' का यह वाक्य कि "इसी गांव में बुड्ढा हो गया मगर मुझे इतनी अकल भी न आई।" (पृष्ठ संख्या– 17) वहीं ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'ग्रहण' कहानी का यह वाक्य "उसे दूर–दूर कोई दिखाई नहीं दे रहा था जिसके सामने मन की गुथियां खोल सके; जिसके कंधों पर सिर रखकर रो सके।" (पृष्ठ संख्या– 65) आदि। स्पष्ट है कि प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने भाषिक संरचना में वाक्य गठन एवं वाक्य के निर्माण में लगभग सरल संयुक्त एवं मिश्र वाक्यों का यथावत प्रयोग प्रसंगानुरूप किया है।

भाषा का गठन

भाषा किसी भी व्यक्ति के लिए अपने विचार और भावों को अभिव्यक्त करने का माध्यम होता है। भाषा के लिए व्यक्ति वाचिक ध्वनियों का प्रयोग करता है। इसीलिए इसमें शब्द, उसके गठन, वाक्य संरचना एवं उसकी प्रसंगानुरूप क्रमबद्धता बहुत महत्व रखती है। इसीलिए एक रचनाकार को अपनी रचना में भाषिक निर्मिती या गठन के लिए पाठकों के साथ साथ– भाषा के व्याकरणिक नियमों से रू–ब–रू होना आवश्यक हो जाता है। चूँकि किसी भी भाषा की स्थिति सामाजिक परिवेश, रहन–सहन एवं व्यवहार से निर्मित होती है। ऐसे में समाज से उसका सीधा जुड़ाव हो जाना वाजिब है।

भारतीय समाज में भाषा के दोनों रूप दिखाई पड़ते हैं। वहीं दलित समाज के अंतर्गत भाषा के अशाब्दिक रूप का प्रयोग ही अधिकाधिक रूप में दिखाई पड़ता है। क्योंकि जब वे अपने ऊपर हो रहे छलाव, शोषण अथवा पीड़ा से परेशान होते हैं तब वे उस

पीड़ा से अंतर्मन में ही चिंतन करते हैं और उस स्थिति का अवलोकन वे मुखर रूप में न करके अन्दर ही अन्दर करते हैं। जैसे प्रेमचंद कृत 'ठाकुर का कुआं' शीर्षक कहानी में गंगी के अंतर्मन में देखने को मिलाता है। जब गंगी ठाकुर के कुएं से पानी लाने जाते वक्त अपने अंतर्मन में विचार करती है कि "हम क्यों नीचे हैं और यह लोग क्यों ऊँच हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहां तो जितने हैं, एक–से–एक छटें हैं? चोरी ये करें, जाल–फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़ेरिया की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित जी के घर में बारहों मासा जुआ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजदूरी देते नानी मरती है। किस बात में है हमसे ऊंचे। हां, मुंह में हमसे ऊँचे हैं।"[9] या फिर 'सद्‌गति' शीर्षक नामक कहानी का यह प्रसंग जब दुखी पंडित जी के घर आग मांगने के लिए जाता है। जहाँ पंडित जी के बरामदे में चले आने के कारण पंडिताइन न केवल उस पर बिफर पड़ती हैं बल्कि उसे आग दूर से ही फेंककर देती हैं। फेके हुए आग की एक चिंगारी दुखी के सिर पर पड़ती है जिससे उसका सर जल जाता है। उस समय वह अपने अंतर्मन में विचार करते हुए कहता है कि "पंडित के घर में चमार कैसे चला आये। बड़े पवित्तर होते हैं यह लोग, तभी तो संसार पूजता है, तभी तो इतना मान है। भर–चमार थोड़े ही हैं। इसी गांव में बूढ़ा हो गया; मगर मुझे इतनी अकल भी न आई।"[10] स्पष्ट है कि दलितों के यहाँ भाषा का अशाब्दिक रूप उनमें अंतर्द्वंद के साथ–साथ तार्किक और चिंतनयुक्त बनाता है।

हमारे अन्दर भावों की निर्मिती में भाषा का बहुत बड़ा योगदान रहता है। यह न केवल मनुष्य को मनुष्य बनने में सहयोगी भूमिका निभाती है बल्कि स्वयं को भी सुसंगत, सुव्यवस्थित बनाने में भी इसकी महती भूमिका दिखाई पड़ती है। "भाषा साधन है साध्य नहीं। अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा से आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण कार्य आरंभ किया गया था, वह कैसे कर पूरा हो।"[11] निश्चित तौर पर भाषा की निर्मिती और इसका गठन मुख्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही किया गया। लेकिन जब वे उद्देश्य त्याग कर इसका प्रयोग अव्यवस्थित, अश्रुतिपूर्ण बना दिया जाये तो निश्चित तौर पर वह भाषा का सबसे निकृष्ट रूप होगा। और ऐसी स्थिति में उस भाषा पतन संभव लगने लगता है। हिन्दू समाज में भाषा का जो रूप प्रचलन के रूप में दिखाई पड़ता है वह अत्यंत समृद्ध, विचारोत्तेजक एवं मनमोहक होता है। किन्तु जैसे ही यह भाषा किसी दलित व्यक्ति के लिए प्रयोग में आती है वैसे ही यह भाषा निकृष्ट, अश्लील और विभद्र रूप का आकार ले लेती है। जैसे "कहां मर गए थे भोसड़ी के......तड़के से ढूँढ–ढूँढ के गोड्डे टूट गए हैं।"[12] अथवा 'गोहत्या' कहानी का यह प्रसंग कि "यह साले नीच लोग नीच ही रहेंगे...। इस गांव में दिन–ईमान तो अब रहा ही नहीं गया है।"[13] भाषा का यह रूप मनुष्य की जाति और पहचान से मुखर हो उठाता है। यही कारण है कि इन मनुष्यों की भाषा फिर उसी अश्लीलता व औघड़पन को धारण कर स्वयं के बीच प्रचलन की भाषा बन जाती है। इस सम्बन्ध में ओमप्रकाश वाल्मीकि का यह कथन उचित ठहरता है जब वे लिखते हैं कि "ग्रामीण जीवन की संरचना के सबसे निचले पायदान पर जिन्दगी जीने वाले पात्र की भाषा उसकी जिंदगी की वास्तविकता, मार्मिकता और दयनीयता से भरे शब्द ही प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि ये संवाद सामाजिक संबंधों में व्याप्त विवशता, आत्महीनता से उपजी हीनता को भी प्रदर्शित करते हैं। लेकिन क्या ये पात्र अपने घरों में, अपने निजी जीवन, अपने परिवार में भी इसी तरह बात करते हैं? यह सवाल यहां इसलिए उठाया जा रहा है, ताकि वस्तुस्थिति का ठीक से मूल्यांकन, विश्लेषण किया जा सके।"[14] स्पष्ट है की दलित समज की भाषा में अश्लीलता, अभद्र रूप समाज के सवर्ण वर्गों के द्वारा प्रतिपादित किया गया है जिसका प्रयोग दलित व्यक्ति अपने समाज में धड़ल्ले से करता है।

"यह प्रश्न बार–बार उठता है कि समाज का जो अंग उपेक्षित, बहिष्कृत और प्रताड़ित है, उससे रचनाकार का सरोकार और अनुभव का दायरा कितना जुड़ा हुआ है। उनके जीवन से दूर खड़े रहकर एक रचनाकार की हैसियत से प्रेमचंद कितना परकाया प्रवेश कर पाए या उनका दर्द क्या इनकी भाषा में संभव नहीं था? ऐसे अनेक प्रश्न विद्यमान हैं, जिन पर आलोचकों, विद्वानों को दृष्टि डालनी होगी, तभी प्रेमचंद की विविधता, समकालीनता के प्रस्थान बिंदु से ठीक से पड़ताल हो पाएगी। यदि इन पात्रों की संवेदनाओं की पड़ताल करनी है तो उनकी भाषा, उनके जीवन को भी समझना होगा, जो साहित्य की परिधि से बाहर है। यह भाषा ही है जो उन्हें समूचे परिदृश्य से अलग करती है। वहां सिर्फ दयनीय स्थितियाँ ही नहीं हैं, विद्रोह और आक्रोश का ज्वालामुखी भी है, जिसे समझने की जहमत उठानी होगी। तभी प्रेमचंद के सरोकारों, संवेदनाओं और समकालीनता के संदर्भ बिंदुओं का ठीक–ठीक आकलन कर पाएगें।"[15] ओमप्रकाश वाल्मीकि का यह कथन निश्चित तौर पर विचारणीय है।

साहित्यकार अपनी विशिष्ट भाषा के माध्यम से अपने समाज का आस–पास में घटने वाली तमाम तरह की घटनाओं का सृजन अपने लेखन के माध्यम से करता है जिससे उसके व्यक्तित्व की एक अलग पहचान बनती है। प्रेमचंद इसी प्रकार के रचनाकार हैं। उनकी भाषा में ऐसी प्रभावोत्तेजकता दिखाई पड़ती है, कि पाठक कथा को रूचि और मनोरंजन के साथ पढ़ता है। तथा कथा के उद्देश्य को आसानी से समझ लेता है। प्रेमचंद के सम्बन्ध में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने ठीक ही लिखा है कि "भाषा की दृष्टि से प्रेमचंद सबसे अलग खड़े दिखाई देते हैं। उनकी शब्दावली, मुहावरा और शैली के प्रभाव पैदा करता है, वह समाज के जीवन–संघर्ष और उसकी क्षमताओं को गंभीरता से अभिव्यक्त करते हैं। प्रेमचंद की भाषा सहजता से शोषित, पीड़ित किसान और मजदूर के जीवन और उनके सामाजिक संघर्षों को जिस तरह रेखांकित करती है, वह अपने–आप में एक ऐसा यथार्थ है जिसे आप अनदेखा नहीं कर सकते । उनकी बोलचाल की भाषा जीवन–संघर्ष के गहरे अर्थबोध की अभिव्यंजना से भरी हुई है। समाज के भीतर, उस काल–विशेष में हो रही सुगबुगाहट का जो संकेत उनकी भाषा देती है, वह अद्‌भुत है। भाषा केवल भावों और विचारों की अभिव्यक्ति ही नहीं होती, बल्कि मनुष्य के जीवन– संघर्षों, संस्कारो, परंपराओं का संकेत भी देती है।"[16] प्रेमचंद को भाषा पर अद्‌भुत पकड़ है वह अपनी रचनाओं के अंतर्गत भाषा का चयन पात्रानुकुल ही करते हैं। तभी तो उनके पात्र अपनी यथार्थ स्थिति को व्यक्त कर रहे होते हैं। उनमें बनावटीपन या दिखावा का भाव लेश मात्र भी नहीं आ पाता। "बातचीत कराने में प्रेमचंद ने असाधारण रूप से देहात के मुहावरों और शब्दों को है। देहाती बोली और हिंदी के एकीकरण में उन्हें इतनी सफलता मिली है कि गांव का रहने वाला पाठक भी प्रेमचंद के किसानों की बात सुनकर उसे और अस्वाभाविक नहीं कह सकता है।"[17] वे अपनी रचनाओं में सामाजिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हुए नजर आते हैं। तभी तो उनकी प्रत्येक रचनाओं में पूरा भारतीय समाज उमड़ पड़ता है और अपने यथार्थ स्वरूप में जीता दिखाई पड़ता है।

प्रेमचंद की तरह ओमप्रकाश वाल्मीकि भी ऐसे मूर्धन्य रचनाकार है जिनकी भाषा सहज, सरल और आम जन–जीवन को अपने अन्दर जकड़ी हुई दिखाई पड़ती है। लेकिन प्रेमचंद की भाषा में जहाँ कलात्मकता, रोचकता, प्रवाहमयता की स्थिति दिखाई पड़ती है वहीं ओमप्रकाश वाल्मीकि की भाषा में प्रवाहमयता और रोचकता के साथ–साथ भाषा में तीखापन, आक्रोश और नकार के भाव दिखाई पड़ते हैं। "उनकी रचनाओं में सृजनात्मक कौशल,

परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा, ब्राह्मणवाद पर तीव्रतम प्रहार, बाबा साहब डॉक्टर अंबेडकर जी के प्रति अटूट श्रद्धा, भारतीय समाज में समरसता, भाईचारा तथा मैत्रीभाव की प्रतिष्ठा, मुख्य रूप से मुखरित तथा अभिव्यंजित हुई है। वे एक प्रतिबद्ध तथा आंदोलनधर्मी, योद्धा लेखक थे उन्होंने अपने जीवन में कभी ब्राह्मणवादी तथा दोहरे चरित्र वाले स्वर्ण लेखकों से समझौता नहीं किया।"[18] यही कारण है कि ओमप्रकाश की भाषा सरल, सहज और कटाक्षपूर्ण दिखाई पड़ती है।

वर्त्तमान समय में भी दलित समाज की सर्वाधिक अबादी गांवों में रहती है; जहाँ न तो शिक्षा का प्रसार है और न ही उनके जीवन में जन–जागरूकता का। वे आज भी उसी स्थिति में जीवन यापन कर रहे हैं जिस स्थिति में प्रेमचंद के समय में दिखाई पड़ते हैं। हाँ उनमें कुछ अमूल–चुल परिवर्तन जरुर दिखाई पड़ता है किन्तु वह भी निम्न स्तर पर ही। इसीलिए उनके बीच भाषाई संरचना या बोल–चाल के शब्दों का प्रयोग उसी ग्रामीण जन–जीवन के शब्दों से निर्मित भाषा का रूप है। यही कारण है ओमप्रकाश वाल्मीकि के पात्रों की स्थिति दो स्वरूपों में दिखाई पड़ती एक पढ़ा लिखा शहरीय मानसिकता से सम्पन्न पात्र तथा दूसरा ग्रामीण या गँवारु जन–जीवन में जीता, व्यवस्था की चोट सहता दलित पात्र। चूँकि प्रेमचंद के यहाँ दलितों इस प्रकार की स्थिति नहीं दिखाई पड़ती क्योंकि उनके यहाँ दलित पात्र ज्यादातर ग्रामीण परिवेश के जन–जीवन से ताल्लुख रखता हुआ नजर आता है। इसीलिए उसकी भाषा में ग्रामीण जन–जीवन के शब्द और उसकी अभिव्यक्ति ज्यादा हुई है।

दलित रचनाकारों ने भाषा के प्रश्न को शिल्प के साथ जोड़ कर नहीं देखा है बल्कि उसे दलित समाज के दुःख–दर्द, छटपटाहट, बेबसी, आक्रोश, नकार उत्पीड़न से उपजी प्रतिक्रियाओं की अभी व्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया है। वर्णवादी व्यवस्था के विरुद्ध दलित रचनाकारों ने विद्रोह और नकार के साथ आक्रोशमयी भाषा का सहारा लिया है। यही भाषा, भाव और अभिव्यक्ति दलित साहित्य को मुख्यधारा के साहित्य से अलग करती है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि पशु से मनुष्य बनने की प्रक्रिया में भाषा ही वह साधन है जो मनुष्य के न केवल विचारों और भावों को समृद्ध बनाती है बल्कि परिवार, समाज, देश तथा विदेश में उसकी एक खास पहचान निर्मित करती है। मनुष्य के विकास में भाषा ही वह पहली सीढ़ी है जिसे पाकर मनुष्यता की स्थिति को वह प्राप्त कर पाता है। भाषा के बिना अस्मिता की पहचान होना संभव नहीं है। आज यदि किसी समाज को उसकी भाषा से काट दिया जाए तो वह न सिर्फ उस समाज से अपनी पहचान को खत्म कर लेता है बल्कि अपनी अस्मिता, अपनी प्रतिष्ठा को भी छोड़ता जाता है। दलित साहित्य में इसीलिए भाषा की बनावट और उसके प्रयोग पर विशेष बात की जाती है, क्योंकि वह दलित संवेदना के ज्यादा करीब है। जैसा ही हम जानते हैं कि साहित्य और संवेदना का गहरा संबंध होता है और उसमें सौंदर्यानुभूति एक ऐसा तत्व है जो सतत् प्रवाहित होता रहता है। यही प्रवाह भाषा को जन्म देता है और वह वह धीरे–धीरे अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाता है। यही कारण है कि भाषा का मनुष्य से सीधा जुड़ाव रखने के कारण उसकी रहन–सहन बोलचाल आचार विचार संस्कार और व्यवहार के ऊपर इसका व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है। प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि साहित्य लेखन में मझे हुए रचनाकार हैं। इसीलिए उन्हें यह पता है कि उनके पात्र किस समाज का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं? उनके शब्द किस तरह के होते हैं? वह अपने जीवन में तथा बाहरी जीवन में उन शब्दों का प्रयोग कैसे करते हैं? उनकी भाषा क्या है? आदि।

संदर्भ ग्रन्थ

1. जैन, निर्मला (संपादित), साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, हिन्दी कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, संस्करण– 1992, पृष्ठ संख्या– 12
2. लिम्बले, शरण कुमार, 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2010, पृष्ठ सं.– 45
3. प्रेमचंद, मानसरोवर (भाग–4), प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली, सं.– 2018, पृष्ठ संख्या– 14
4. वही, पृष्ठ संख्या– 15
5. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं.– 2014, पृष्ठ संख्या– 43
6. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, छतरी, भारतीय ज्ञानपीठ,लोदी रोड, नई दिल्ली, सं.– 2013, पृष्ठ संख्या– 45
7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, घुसपैठिये, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं.– 2011, पृष्ठ सं.– 15
8. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं.– 2014, पृष्ठ संख्या– 91
9. प्रेमचंद, मानसरोवर (भाग–1), प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली, सं.– 2018, पृष्ठ संख्या– 105
10. प्रेमचंद, मानसरोवर (भाग–4), प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली, सं.– 2018, पृष्ठ संख्या– 16
11. प्रेमचंद के विचारक और समकालीन चुनौतियां, अच्युतानंद मिश्र, गवेषणा, पृष्ठ संख्या– 74
12. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं.– 2014, पृष्ठ संख्या– 33
13. वही, पृष्ठ संख्या– 57
14. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2014, पृष्ठ संख्या– 63
15. वही, पृष्ठ संख्या 160–161
16. वही, पृष्ठ संख्या– 160
17. शर्मा, डॉ. रामविलास, प्रेमचंद, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2011, पृष्ठ संख्या–139
18. कर्दम, जयप्रकाश (सं), 'ओमप्रकाश वाल्मीकि व्यक्तित्व, विचारक और सृजक', वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2016, पृष्ठ संख्या– 71